सूरदास

जीवन - परिचय → (भक्ति - काल में सगुण भक्ति धारा की दो शाखाएँ थी -

i) राम भक्ति शाखा

ii) कृष्ण भक्ति शाखा।

कृष्ण भक्ति शाखा के प्रवर्तक सूरदास थे) अधिकांश विचारक इनका जन्म-स्थान वल्लभगढ़ (गुड़गांव) के निकटवर्ती सीही नामक ग्राम में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में मानते हैं। इनकी जन्मतिथि को लेकर विद्वानों में भ मतभेद पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनके माता - पिता और परिवार के अन्य लोगों के बारे में भी कुछ पता नहीं है। डॉ. नगेन्द्र ने अपने ग्रंथ इतिहास "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में इनका जन्म 1478 ई. और मृत्यु 1583 ई. माने हैं। इनका जीवनवृत्त इनकी कृतियों अर्थात् अन्त: साक्ष्य में आंशिक रूप से प्राप्त होता है जबकि बाहरी साक्ष्य के आधार पर अधिक उपलब्ध होता है। इनमें कवि नाभादास कृत "भक्तमाल", गोकुलनाथ कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", यदुनाथ कृत "वल्लभ दिग्विजय" तथा "निजवार्ता" का आधार लिया जाता है। गोकुलनाथ कृत रचना 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में केवल इतना ज्ञात होता है कि वे पहले आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर एक साधु अथवा स्वामी के रूप में रहकर शिष्य बनाने का काम करते थे। गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ का मंदिर बनने के पश्चात् एक बार वल्लभाचार्य उस घाट पर उतरे। तब सूरदास ने उनके दर्शन किये और अपने द्वारा रचित एक पद गाकर सुनाया। तब उन्होंने 1510 ई. में उन्हें अपना शिष्य बना लिया। अत: उनके गुरु का नाम वल्लभआचार्य था। साथ ही उन्हें श्रीनाथ के मन्दिर की सेवा भी सौंपी गयी। इस मंदिर को पूरनमल खत्री ने गोवर्धन पर्वत पर संवत् 1576 में पूर्ण बनवाया था।)

इन्होंने अपनी कृति 'साहित्य लहरी' के अन्त में एक पद में अपनी वंश-परम्परा बतायी है। इस पद के अनुसार राजा पृथ्वीराज चौहान के कवि चन्दबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। चन्द कवि के कुल में हरिचन्द हुए। उनके सात पुत्रों में से सबसे छोटे पुत्र सूरदास अथवा सूरजदास थे। शेष छः भाई मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गये। (यहाँ पर एक बात सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि वे अन्धे थे।

Scanned with CamScanner

ये जन्म से अंधे थे अथवा बाद में अन्धे हुए- इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।) तत्पश्चात् अन्धे सूरदास बहुत दिनो तक इधर-उधर भटकते रहे। एक दिन कुएँ में गिर गये और छः दिन उसी में रहे। सातवें दिन भगवान् कृष्ण ने दर्शन देकर इन्हें वर मांगने के लिए कहा तो इनके द्वारा उनकी भजन करने की इच्छा को प्रकट किया। इसके बाद भगवान् कृष्ण ने इन्हें कुएँ से बाहर निकाला। फिर ये ब्रज में आकर भगवान् कृष्ण की भक्ति करने लगे। इनकी भक्ति सख्य भाव (मित्र) की थी। उस समय, वल्लभाचार्य ने इन्हें "अष्टछाप" कवियों में सम्मिलित किया। सूरदास बचपन से वैरागी और संगीत प्रेमी थे। इनके शृंगारी पदों की रचना कवि विद्यापति की पद्धति पर हुई है। इनकी मृत्यु पर विट्ठलनाथ ने कहा था-

पुष्टि मारग को जहाज जात है सो
जाको कछु लेन होय सो लेउ।

रचनाएँ → इनकी सात रचनाएँ प्रकाशित हैं-

1. सूरसागर-
2. सूरसारावली-
3. साहित्य लहरी-
4. सूर पचीसी-
5. राधारसकेली-
6. सूररामायण
7. सूरसाठी।

इनमें से विद्वान् 3 रचनाओं को प्रामाणिक एवं श्रेष्ठ मानते हैं-

1. सूरसागर 2. सूरसारावली 3. राधारसकेली।)

"सूरसागर" की रचना "भागवत" की पद्धति पर द्वादश स्कन्धों में हुई है। इसमें 4,000 से लेकर 5,000 पद मिलते हैं। "सूरसारावली" में 1103 पद हैं जिनमें कृष्ण की लीलाओं का चित्रण मिलता है। "साहित्य लहरी" में इनके सुप्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है। उसमें अर्थगोपन-शैली में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं कि सूरदास वात्सल्य और शृंगार रसों का कोना-कोना झांक आए हैं।

सूरदास का भ्रमर-गीत → सूरदास का भ्रमर-गीत हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ विप्रलम्भ काव्य है। इसकी कथावस्तु "श्रीमद्भागवत" के दशम स्कन्ध ~~अध्याय के पद~~ 46 वें तथा 47 वें अध्यायों से उद्धृत ~~की~~ है। इसके 118 ~~[illegible]~~ के श्लोकों

प्रसंग को सूरदास ने 'भ्रमर-गीत' के 477 पदों में विवेचित किया है।।

"भ्रमर-गीत" शब्द का अर्थ है- भ्रमर को लक्ष्य करके गाया गया गान। साहित्य में "भ्रमर" शब्द का प्रयोग भगवान श्रीकृष्ण तथा उनके ज्ञानी मित्र मथुरावासी उद्धव के लिए हुआ है। इसका कारण भ्रमर, श्रीकृष्ण तथा उद्धव - इन तीनों में निम्नलिखित समानताएँ रही हैं-

1. वर्ण-साम्य → ये तीनों काले वर्ण के थे। भ्रमर के सिर पर पीले रंग का बिंदु रहता है तो श्रीकृष्ण तथा उद्धव के ललाटों पर पीले रंग के केसर एवं चंदन के तिलक रहते थे। साथ ही श्रीकृष्ण तथा उद्धव पिताम्बर धारण करते थे।

मौन-ग्रहण → भ्रमर की गुंजार कमल में बन्द रहने के कारण बन्द रहती है जबकि श्रीकृष्ण एवं उद्धव मौन समाधि लगाने वाले थे।

वाणी की अस्पष्टता → भ्रमर की गुंजार किसी के समझ में नहीं आती है। ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा उद्धव के साथ भेजा गया योग साधना, निर्गुण ईश्वर को ग्रहण करने तथा ज्ञानी बनने का

उपदेश गोकुल की गंवार गोपियों के समझ में आने वाला नहीं था।

4. रस-लम्पटता → भ्रमर कमल, गुलाब और चम्पा के फूलों के रस का लोभी होता है। रस को ग्रहण करके उसके समाप्त हो जाने के पश्चात वह इन फूलों के पास थोड़ी देर भी नहीं रुकता है। ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण गोपियों से प्रेम करके उन्हें ठुकराकर मथुरा चले गये। गोपियों का मानना था कि उनका मित्र उद्धव भी ऐसा ही है।

5. स्वर में मोह-शक्ति → भ्रमर अपनी गुंजार से सब लोगों के मन को मुग्ध कर देता है। ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण अपने मधुर वचनों एवं उद्धव अपनी वाणी से ऐसा प्रयास करते नज़र आते हैं।

'भ्रमर-गीत' के मुख्य उद्देश्य →

1. ज्ञान पर प्रेम की विजय को बताना।
2. मस्तिष्क पर हृदय की विजय को बताना।
3. निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की अपेक्षा सगुण साकार ईश्वर की उपासना को श्रेष्ठ बताना।
4. योग पर भक्ति की विजय को दिखाना।

1) "सूर का 'भ्रमर-गीत' वियोग श्रृंगार (विप्रलम्भ श्रृंगार) का श्रेष्ठ काव्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

उपालम्भ काव्य की दृष्टि से 'भ्रमर-गीत' के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिये।

अथवा

"सूर का 'भ्रमर-गीत' वियोग श्रृंगार का सर्वोच्च शिखर है" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'भ्रमर-गीत' का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

"सूर का 'भ्रमर-गीत' वियोग श्रृंगार की सम्पन्न मंजूषा है।" स्पष्ट कीजिए।

सूरदास ने अपने काव्य में वर्णन तो श्रृंगार रस के दोनों भेदों - संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार का किया है परंतु वियोग श्रृंगार अधिक प्रखर हुआ है। श्रीकृष्ण के गोकुल में रहने तक उनके सखी राधा तथा गोपियों का प्रेम संयोग श्रृंगार के अंतर्गत आता है जबकि श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद राधा एवं गोपियों का वियोग, वियोग श्रृंगार में आता है। सूरदास ने 'भ्रमर-गीत' में वियोग श्रृंगार का अत्यधिक व्यापक और शुद्ध चित्रण किया है। उन्होंने गोपियों

के वियोग में निम्नलिखित सभी अवस्थाएँ बताती हैं - अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा एवं मरण। - 10

श्रीकृष्ण के वियोग में यशोदा, बाबा, गोपियाँ तथा नर-नारी ही नहीं अपितु पशु एवं प्रकृति भी आँसू बहाते हैं -

अति कृस गात भई है तुम बिनु ये परम दुखारी गाय।
जल समूह बरसत अंखियन ते, हूंकत लीन्हें नांव॥

श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियों की आंखों में हमेशा वर्षा ऋतु स्थित रहती है। वर्षा ऋतु के बादलों ने भी उनके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है क्योंकि बादलों का बरसना अन्त में रुक जाता है परंतु उनके नेत्रों से आंसू निरंतर बहते रहते हैं। उन्हें रात काली नागिन के समान लगती है -

पिया बिनु नागिन कारी रात।

कृष्ण के मित्र उद्धव के समझाने पर वियोगिनी गोपियाँ उनको उद्धव को अड़ियल पशु, जन्म से ही बुरे पदार्थों का सेवन करने वाला, स्वार्थी, कपटी, धूर्त, दुष्ट और नीरस कहकर

फटकार लगाती हैं। गोपियाँ विरह में सभी मथुरा-वासियों को तन एवं मन से काला कह देती हैं -

बिलग जनि मानहु, ऊधो कारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।
मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन-स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन न्यारे॥

गोपियाँ कुब्जा को अपनी सौत मानती हुई उसे व्यभिचारिणी नारी कह देती हैं -

अब वे कान्ह कुबरी संचैं बने एक ही ताव।
पीत ध्वजा उनके पीताम्बर, लाल ध्वजा कुबजा व्यभिचारी॥

सूरदास ने इस विरह-वर्णन में राधा का वर्णन करते हुए बताया है कि उसे बरसते हुए बादल अच्छे नहीं लगते हैं। बादलों की गर्जना उसके प्राणों का हरण कर रही है। यमुना नदी भी उन्हें कृष्ण के वियोग में काली दिखाई देती है -

देखियत कालिन्दी अति कारी।

राधा को ऐसा लगता है कि मानो वीणा की मधुर आवाज को सुनकर चन्द्रमा का रथ थम गया है इसीलिए रात्रि बीत नहीं रही है। वह अपनी सखी से अनुरोध करती है कि उसके वीणा बजाने पर ही

उसका विरह कम हो सकता है अन्यथा उस विरह में हानि की संभावना है। वियोग अवस्था में राधा की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी है -

अतिमलीन वृषभानुकुमारी।

सूरदास ने 'भ्रमर-गीत' में प्रकृति के आलंबन तथा उद्दीपन - दोनों रूपों का वर्णन किया है। गोपियों को संयोग के समय सुंदर लगने वाली वस्तुएँ कृष्ण के वियोग में हृदय को विरह प्रदान करने वाली लगती हैं। वर्षा के समय बादलों की घटाओं को देखकर, बसंत ऋतु में मधुवन को हरा-भरा देखकर और विकसित कुंजों को देखकर गोपियों का हृदय दुःख से युक्त हो जाता है -

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत-किरन भानु भईं भुंजैं॥

गोपियों की पीड़ा में भावुकता, वाणी का चातुर्य, वाग्विदग्धता तथा सहृदयता है। 'भ्रमर-गीत' का प्रतिपाद्य अथवा मुख्य विषय वियोग शृंगार है। कृष्ण के वियोग में गोपियों के नेत्र रात और दिन आँसू बरसाते रहते हैं -

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे॥

इस प्रकार प्रत्येक ऋतु गोपियों के विरह को बढ़ाती हुई दिखाई देती है। उन्हें सावन की हरी-भरी धरती भी बुरी लगती है और मेघ उसे अपनी वाणी से कोसती नजर आती हैं। आंसुओं के प्रवाह के कारण गोपियों के नेत्रों में काजल भी टीक नहीं पाता है।

उद्धव ब्रज में आकर जब गोपियों को ज्ञान और योग का संदेश देता है तो वे उस उपदेश को ग्रहण करने की इच्छुक नहीं होती हैं। वे कृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुल हैं। वे उद्धव की रूखी बातें सुनकर उसे कहती हैं-

अँखियाँ हरि-दर्शन की भूखी।
कैसे रहैं रूप रस रांची ये बतियां सुनी रूखी॥

गोपियों को वेदना ने इतना ~~अधीर~~ अधीर, व्याकुल एवं आतुर बना दिया है कि उन्हें किसी भी प्रकार का होश नहीं है। विरह-वेदना से व्यथित होकर वे मरना ज्यादा अच्छा समझती हैं-

अब या तनहिं राखि का कीजै।
सुनरी सखी श्यामसुन्दर बिन बांटि विषय विष पीजै॥

सूरदास ने विरह का अत्यधिक सात्विक रूप अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनकी गोपियाँ 'मनसा', 'वाचा' और 'कर्मणा' से कृष्ण के प्रति समर्पित हैं। सूरदास के विरह-वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य एवं उपालम्भ (उलाहना) भाव की प्रमुखता है।

गोपियाँ उद्धव के द्वारा दिये गये उपदेश को सुनकर अपनी कटु बातों से उद्धव को निरुत्तर कर देती हैं। गोपियों का विरह-वर्णन मार्मिक और हृदय को स्पर्श करने वाला है। उनके प्रेम की दृढ़ता भी दर्शनीय है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि कृष्ण ने भले ही मथुरा में जाकर कुब्जा से अपना नाता जोड़ लिया है किन्तु अन्त में वे कृष्ण हमारे ही होंगे -

कोटिक लाख करौं पर कुबरी अन्तहिं कान्ह हमारे।

सूर के अतिरिक्त विद्यापति, जायसी, घनआनन्द, बिहारी और जयशंकर प्रसाद - श्रृंगार-वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं परंतु इस क्षेत्र में उनकी बराबरी कोई अन्य कवि नहीं कर सकता है। इसका कारण यह है कि सूरदास ने अपने काव्य में जो विविधता, विस्तार, स्वाभाविकता और सूक्ष्मता दिखायी है, वह किसी अन्य कवि में नहीं है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं

कि सूर का विरह-वर्णन उनके संयोग वर्णन के समान ही उच्च कोटि का है। वास्तव में वे वात्सल्य रस के सम्राट हैं ही किन्तु श्रृंगार रस के भी सम्राट माने जाते हैं। इनके जैसा श्रृंगारी कवि भक्तिकाल में कोई दूसरा नहीं हुआ, यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

प्रश्न-2 'भ्रमर-गीत' के संदर्भ में सूरदास के काव्य-वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

अथवा

सूरदास द्वारा रचित विप्रलम्भ काव्य 'भ्रमर-गीत' की काव्यगत विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

अथवा

"सूरदास में जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता भी है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'भ्रमर-गीत' की विवेचना कीजिए।

सूरदास का 'भ्रमर-गीत' हिन्दी-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट विप्रलम्भ काव्य माना जाता है। इन्होंने इसकी कथावस्तु "श्रीमद्भागवत" के दशम स्कन्ध के 46 वें तथा 47 वें अध्यायों से ली है। इन्होंने इसके 118 श्लोकों के प्रसंग को 'भ्रमर-गीत' के 471 पदों में बांधा है।

'भ्रमर गीत' का शाब्दिक अर्थ है - भ्रमर को लक्ष्य करके गाया गया गान। साहित्य में 'भ्रमर' शब्द का प्रयोग भगवान् श्रीकृष्ण और उनके ज्ञानी मित्र मथुरावासी उद्धव के लिए हुआ है। इसका कारण भ्रमर भगवान श्रीकृष्ण और उद्धव में कुछ समानताएँ थी -

i) वर्ण-साम्य
ii) मौन-ग्रहण
iii) वाणी की अस्पष्टता
iv) रस-लम्पटता
v) स्वर में मोह-शक्ति।

'भ्रमर-गीत' के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

i) ज्ञान पर प्रेम की विजय को दिखाना।
ii) मस्तिष्क पर हृदय की विजय को बताना।
iii) निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की उपेक्षा करके सगुण साकार ईश्वर की उपासना को श्रेष्ठ बताना।
iv) योग पर भक्ति की विजय को दिखाना।

'भ्रमर-गीत' का भाव पक्ष →

i) मौलिकता → "श्रीमद्भागवत" में कुब्जा और राधा के प्रसंग नहीं हैं परंतु सूरदास ने अपने 'भ्रमर-गीत' में इन्हें

वर्णन किया है। गोपियों ने कृष्ण की लीलाओं की मोहिनी [illegible] और [illegible] अभिव्यक्ति करा [illegible] है। जब तें [illegible] बातें [illegible] हीं [illegible]। पीत बसन [illegible] पीताम्बर, [illegible] कालिंदी॥

वियोग-अवस्था में राधा की स्थिति [illegible] है -

प्रीतम [illegible] मारी।

नैनों बरसते हुए मेघ बरसते नहीं थकते हैं और मेघों की गर्जना, पपीहे की [illegible] को [illegible] कर रही है। इसे लगता है कि वीणा की मधुर आवाज को सुनकर चन्द्रमा का रथ रुक गया है और इसीलिए उसका विरह बढ़ गया है। कृष्ण के वियोग में यमुना नदी इसे काली दिखाई देती है -

देखियत कालिन्दी अति कारी।

इसमें माता के वियोग से दुःखी होकर श्रीकृष्ण उद्धव के द्वारा उन्हें यह सन्देश भेजते हैं कि आप मेरे बिना किसी प्रकार से रहना तथा मैं और बलराम शीघ्र ही आपके पास आयेंगे। मेरी बाँसुरी और अन्य वस्तुओं को यशोदा से बचाकर रखना। नन्दबाबा ने तो निर्दय बनकर हमारी खोज-खबर नहीं ली है।

ii) प्रकृति-चित्रण → सूरदास ने आकाश, चाँदनी, [illegible] पृथ्वी, [illegible] आलंकारिक रूप में प्रकृति-चित्रण किया है। [illegible] ही प्रकृति-चित्रण किया है। गोपियों को [illegible] बादलों को देखकर, बादल व वर्षा, के [illegible] देखकर और विकसित फूलों को देखकर गोपियों का दुःख [illegible] हो जाता है -

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं॥
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत-किरन भानु भई भुंजैं॥

iii) वियोग शृंगार का चित्रण → सूरदास ने [illegible] शृंगार के दोनों रूपों - संयोग एवं वियोग का वर्णन किया है परन्तु वियोग-वर्णन अधिक [illegible] है। श्रीकृष्ण के गोकुल में रहते तक राधा और गोपियों का प्रेम संयोग शृंगार में आता है तो कृष्ण के मथुरा-गमन से वियोग शृंगार प्रारम्भ हो जाता है। श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के बाद गोपियों के वियोग

में निम्नलिखित सभी अवस्थाएँ पायी जाती हैं - अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण, मूर्च्छा और उद्वेग। श्रीकृष्ण के वियोग में यशोदा, राधा, गोपियाँ, अन्य नर-नारी, पशु और प्रकृति भी आँसू बहाते नजर आते हैं।

- अति मलिन वृषभानु कुमारी।
- उधौ इस गात भई हैं तुम बिनु वो परम दुखारी आय।
जल समूह बरसत अखियन ते, हंकत लीन्हें नांव।।

गोपियों की वेदना ने उन्हें इतना अधीर, व्याकुल एवं आतुर बना दिया है कि उन्हें किसी प्रकार का होश नहीं है। वे विरह-वेदना से व्यथित होकर मर जाना पसंद करती हैं-

अब यो तनहिं राखि का कीजै।
सुन री सखी श्यामसुन्दर बिन बांटि विषय विष पीजै।।

) कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम → गोपियाँ कृष्ण को छोड़कर और किसी को अपना आराध्य बनाने के लिए तैयार नहीं हैं। वे उद्धव को कहती हैं कि हम कृष्ण को नहीं छोड़ सकती हैं क्योंकि वे ही हमारे एकमात्र आश्रय

(9)

आश्रय हैं। उनकी आँखें कृष्ण के दर्शन करना चाहती हैं-

- अँखियाँ हरि-दर्शन की भूखी।
कैसे रहति रूप रस रांची ये बतियां सुनि रूखी।।

v) उद्धव का उपहास → गोपियों ने उद्धव को खरी-खोटी सुनाकर उसका उपहास भी किया। वे उद्धव की निंदा न करके, अपितु कृष्ण का मित्र मानकर उसकी योग-साधना का मजाक उड़ाती है-

आए जोग सिखावन पाण्डे।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टांडे।।

vi) वाग्विदग्धता → इस शब्द से तात्पर्य है- चतुराई से अपनी बात को कहना। इसके अंतर्गत सूरदास ने दृष्टांत पद्धति और तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया है। इसके अंतर्गत गोपियाँ निम्नलिखित रूपों में अपनी चतुराई को प्रकट करते हुए उद्धव को निरुत्तर कर देती हैं-

* निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन → गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की धज्जियाँ उड़ाते हुए कहती हैं-

निर्गुन कौन देस को वासी?
को है जनक, जननी को कहियत, कौन नारि को दासी?
कैसो बरन, वेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी?

गोपियाँ अपनी वाणी की चतुराई से उद्धव के निर्गुण सम्बन्धी ज्ञान की धज्जियाँ उड़ा देती हैं।

* प्रेम-मार्ग की उत्कृष्टता → सूरदास ने 'भ्रमर गीत' में प्रेम के मार्ग को ज्ञान के मार्ग की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट बताया है। गोपियों ने पतंगा, मधुप और मछली के उदाहरणों से प्रेम के मार्ग को सबसे उत्कृष्ट बताया है।

* उपालम्भ, व्यंग्य और डाँट-फटकार → गोपियाँ उद्धव को अत्यधिक भावुकता, सहृदयता और वाणी की चतुराई से अनेक उपालम्भ देती हैं। उद्धव पर व्यंग्य के बाणों की बौछार कर देती हैं। वे भ्रमर के माध्यम से कृष्ण को भी अनेक उपालम्भ देती हैं। वे सभी मथुरा-वासियों को तन और मन से काला बता देती हैं:—

बिलग जनि मानहु ऊधौ प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।

मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम गुन न्यारे॥

वे उद्धव को अड़ियल बकरा, जन्म से ही कड़वे पदार्थों का सेवन करने वाला, स्वार्थी, लम्पट, धूर्त, कपटी और नीरस कहकर फटकारती हैं। अंत में गोपियाँ यहाँ तक कह देती हैं कि यदि तुम जल्द यहाँ से मथुरा नहीं जाते तो तुम्हारे साथ संभवतः कोई बुरी घटना घटित हो सकती है।

* विनय-प्रदर्शन → कहीं-कहीं पर गोपियाँ अपने विनय का प्रदर्शन करती हुई अपने हृदय की विवशता को प्रकट करती हैं। इसमें उनका श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम प्रकट होता है। वे उद्धव को कहती हैं कि तुम्हें निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान एवं योग-साधना अच्छे लगते हैं तो हमें सगुण साकार श्रीकृष्ण, भक्ति एवं उनके प्रति प्रेम अच्छे लगते हैं। वे कहती हैं —

ऊधौ! मन नाहिं दस-बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम-संग को आराधै ईस।

वे अपने प्रेम को दृढ़ करने के लिए अनेक उदाहरणों को प्रस्तुत करती हैं, जैसे चकोर पक्षी अंगारे खाता है, भ्रमर कमल के पत्तों में बंद हो जाता है और पतंगा दीपक की लौ में जलकर मर जाता है।

योग-साधना का खण्डन → गोपियाँ उद्धव के द्वारा बताये गये योग-साधना का मजाक उड़ाती हैं। वे कहती हैं कि हम अंगूर जैसी मीठी भक्ति को त्याग कर निबौरी जैसी कटु योग-साधना को क्यों स्वीकार करें।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी को
अपने मुख खैहै॥

सूरदास की गोपियों में विलक्षण तर्क-शक्ति है जिसके बल पर वे ज्ञानी उद्धव की बोलती बन्द कर देती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "निःसंदेह सूर का भ्रमर-गीत नाना विशेषताओं से युक्त, भावमग्न, गहन, विस्तृत और व्यापक है।"

भ्रमर-गीत का कला पक्ष →

i) भाषा एवं शैली → सूरदास की भाषा सरस शब्दावली से युक्त साहित्यिक ब्रज भाषा है। उन्होंने इसमें संस्कृत, राजस्थानी, अप्र अपभ्रंश, अरबी, फारसी, तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

- निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति, पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे॥

उन्होंने सर्वत्र गीत-शैली का प्रयोग किया है। साथ ही इसमें अनेक राग एवं रागिनियों को भी प्रयोग में लिया है।

ii) छन्द → उनके पदों में गेय मुक्तक पद छन्दों की प्रधानता है। कहीं-कहीं पर कवित्त, सवैया, गीतिका

~~प्रयोग~~
एवं आरिल्ल छन्दों का प्रयोग भी किया है।

iii) अलंकार → इन्होंने अपने काव्य में अनुप्रास अलंकार की प्रधानता के साथ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और उदाहरण इत्यादि अलंकारों का प्रयोग भी किया है।

iv) रस → इन्होंने अपने काव्य में शृंगार और वात्सल्य रसों के दोनों भेदों- संयोग एवं वियोग का वर्णन श्रेष्ठता के साथ किया है। संयोग शृंगार का एक उदाहरण प्रस्तुत है-
हमारे हरि हारिल की लकड़ी।
मन बाच क्रम नन्द नन्दन सों यह
दृढ़ करि पकरी॥

v) गुण → इनके काव्य में प्रसाद और माधुर्य गुणों का समावेश दिखाई देता है।

vi) शब्द-शक्ति → इन्होंने अपने काव्य में लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्तियों का अत्यधिक प्रयोग किया है। गोपियों के कथनों में इनके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

vii) बिंब-विधान → जब कवि के द्वारा वर्णित कोई बात सजीव रूप धारण कर लेती है तो उसे बिंब-विधान कहा जाता है। इनके काव्य में नेत्र-बिंबों की अधिकता देखने को मिलती है।

Scanned with CamScanner

भ्रमरगीत काव्य परम्परा में सूरदास का स्थान-निर्धारण

हिन्दी में भ्रमरगीत-परम्परा :-

(अ) भक्तिकाल:-

1. सूरदास:- हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम भ्रमरगीत लिखने वाले सूरदास हैं। ये अष्टछाप कवियों में एक प्रधान कवि माने जाते हैं। इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध से कथा लेकर 'भ्रमरगीत' लिखा और इसमें स्वयं की मौलिकताएं प्रस्तुत की। इन्होंने तीन भ्रमरगीतों की रचना की -

प्रथम भ्रमरगीत :- यह भागवत के भ्रमरगीत का अनुवाद मात्र है। इसकी रचना दोहा, चौपाई और सार छन्दों में की गई।

द्वितीय भ्रमरगीत:- इसमें एक ही छन्द है, जिसमें उद्धव का मथुरागमन, उसका गोपियों के प्रति उपदेश, गोपियों के उपालम्भ, उनका विरह-वर्णन और उनके विरह को सुनकर कृष्ण का मूर्च्छित होना इत्यादि वर्णित है।

तृतीय भ्रमरगीत :- यह इनके ग्रंथ 'सूरसागर' के चार हजार अस्तर(4070) वें पद से लेकर 4710 वें पद तक चलता है। यह सर्वाधिक प्रसिद्ध भ्रमरगीत है। इसमें ज्ञान का खण्डन और प्रेम का मण्डन है। इसमें निर्गुण ईश्वर की हार और सगुण ईश्वर की विजय का उल्लेख है। इसमें गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से कृष्ण तथा उद्धव को अनेक उपालम्भ दिए हैं। इसमें कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन भी है। इन्होंने सर्वत्र अपनी मौलिकता को प्रकट किया है। इन तीन भ्रमरगीतों में 'तृतीय भ्रमरगीत' का सर्वाधिक महत्व है। अनेक विशेषताओं के कारण इनका इस परम्परा में सर्वाधिक महत्व है।

2. नन्ददास :- इस परम्परा में इन्होंने 'भँवरगीत' नामक एक लघुकाव्य लिखा। इस काव्य में इन्होंने प्रश्नोत्तर शैली अपनाई है। उद्धव और गोपियों में यह क्रम चलता है। निर्गुण और सगुण ईश्वर के बारे में भी चर्चा की गई है। इस काव्य में दार्शनिकता की प्रधानता है। नन्ददास की गोपियों से उद्धव अत्यधिक प्रभावित होता है-

देखत इनको प्रेम नेम उद्धव को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।

3. परमानंददास :- इन्होंने भी कुछ पद भ्रमरगीत से संबंधित लिखे हैं। स्वतंत्र रूप से भ्रमरगीत प्रसंग का विस्तार नहीं किया है। इनके पदों पर सूरदास का प्रभाव है। इनकी गोपियां विरह युक्त होकर कहती हैं -

मोहन यह क्यों प्रीत बिसारी।
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी॥

4. रसखान :- रसखान ने इस प्रसंग से संबंधित कुछ सवैया और कवित्त 3 लिखे हैं।

5. मलूकदास:- इन्होंने इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए 'ऊधो पचीसी' नामक काव्य लिखा है।

6. हरिराय :- इन्होंने इस परम्परा में 'स्नेह लीला' नामक काव्य लिखा है।

7. रहीम :- इन्होंने इस परम्परा के अन्तर्गत बरवै छन्द में भ्रमरगीत की रचना की है। इसमें गोपियों के विरह को चित्रित किया गया है।

8. तुलसीदास :- इनके ग्रन्थ 'कवितावली' में इस प्रसंग का एक सवैया तथा एक कवित्त मिलता है। इसमें गोपियों की मार्मिक व्यथा अभिव्यक्त हुई है। 'कृष्ण गीतावली' ग्रंथ में इस प्रसंग का विस्तार है। इस प्रसंग में भ्रमरगीत की संपूर्ण विशेषताएं पाई जाती हैं। इसके अन्तर्गत गोपियों से मर्यादा का पालन करवाया गया है।

चतुर्भुजदास, कृष्णदास तथा चाचा हितवृंदावनदास ने भी इस प्रसंग से संबंधित अपनी प्रतिभा को अभिव्यक्त किया है।

(ब) रीतिकाल :-

1. भिखारीदास :- इन्होंने इस प्रसंग पर कुछ फुटकर सवैया लिखे हैं। इनमें गोपियों का विरह वर्णन है। इनकी गोपियाँ कुब्जा पर कटाक्ष करती हैं-

ऊधो तहाँई चलो लै हमैं, जहँ कूबरी कान्ह बसे एक ठौरी।

2. घनानन्द :- इन्होंने इस प्रसंग पर कुछ फुटकर छन्द लिखे हैं। इनमें सगुणतथा निर्गुण ईश्वर के रूप को प्रस्तुत किया है। सगुण ईश्वर की विजय को दिखाया गया है।

मतिराम, देव, सेनापति और पद्माकर ने इस प्रसंग से संबंधित कुछ फुटकर पदों की रचना की है। निष्कर्षतः इनके वर्णन का प्रसंग गोपियों के विरह को प्रस्तुत करना ही है।

(स) आधुनिककाल :-

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र :- इन्होंने इस प्रसंग पर कुछ पद्य लिखे हैं। इन पदों पर सूरदास का प्रभाव है। इनकी गोपियाँ उद्धव की ज्ञानयुक्त बातों को सुनकर अत्यधिक क्रोध को प्रकट करती है।

2. सत्यनारायण 'कविरत्न' :- इन्होंने आधुनिक युग में ब्रज भाषा में स्वतंत्र रूप से 'भ्रमरगीत' की रचना की। इन्होंने परम्परागत प्रसंग में कुछ मौलिकता का समावेश किया है। इन्होंने यशोदा के माध्यम से मातृभूमि की व्यथा का चित्रण किया है। इसमें लोक-हित को महत्व दिया गया है। कविवर इस प्रसंग को "भ्रमरदूत" नाम से प्रस्तुत किया है। इस काव्य का आधार इन्होंने श्रीमद्भागवत को न मानकर आधुनिक वातावरण और देश की स्थिति को भावनाओं मुख्यतः वर्णन यशोदा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

3. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :- इनका ग्रंथ 'प्रियप्रवास' इससे संबंधित है। यह महाकाव्य है। इस महाकाव्य का लगभग आधा भाग इस प्रसंग से युक्त है। इस प्रसंग का आरंभ कृष्ण द्वारा ब्रज की स्मृति से होता है। इसमें यशोदा का कृष्ण की स्मृति में विस्तार से विलाप है। कवि ने राधा को उद्धव के सामने आँसू बहाते हुए प्रस्तुत न कर लोक सेविका के रूप में प्रकट किया है। अतः वह कृष्ण को इसी प्रकार का संदेश भेजती है-

प्यारे जीयें जगहित करें, गेह चाहे न आयें।

4. मैथिलीशरण गुप्त :- इन्होंने अपने ग्रंथ 'द्वापर' में इस प्रसंग को व्यक्त किया है। इसमें यह प्रसंग विस्तार से नहीं है। गोपियां भ्रमर को लक्ष्य करके ही उद्धव को कटुवचन कहती हैं।

5. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' :- इन्होंने 'उद्धवशतक' ग्रंथ लिखा है। यह खण्डकाव्य है और इसमें 117 छन्द हैं। इसका विषय भ्रमरगीत ही है। इस काव्य के विषय में ऐसा कहा जाता है कि

इसमें अन्य सभी भ्रमरगीतों की विशेषताओं का समावेश है। इस काव्य में प्रारंभ में कृष्ण को मथुरा में यमुना नदि में स्नान करते हुए बताया गया है और वे वहाँ एक बहते हुए कमल को देखकर राधा की स्मृति में बेहोश हो जाते हैं। चेतनायुक्त होने पर उद्धव के माध्यम से गोपियों को संदेश भेजते हैं। गोपियाँ उद्धव को अपने तर्कों से निरुत्तर कर देती हैं।

चुप रहो, ऊधो, सूधो पथ मथुरा को गहो,
कहो न कहानी जो विविध कहि आये हो।

इनकी गोपियाँ कृष्ण के संदेश को सुनने के लिए उत्सुकता प्रकट करके कुब्जा पर ~~प्रकट करके~~ कड़े प्रहार करती हैं।

इनके अतिरिक्त बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेंदु की शैली पर कुछ पद्य लिखे हैं। प्रसंग उपर्युक्त प्रकार से ही है।

Scanned with CamScanner

सूरदास

सूरदास का शृंगार वर्णन

शृंगार को 'रसराज' की संज्ञा प्रदान की गई है। इसका स्थायी भाव रति अत्यन्त व्यापक है इसीलिए आचार्य कुलपति मिश्र ने शृंगार को **"सकल रसन को राव"** कहा है। आचार्य विश्वनाथ ने 'काम' के अंकुरित होने का कारण शृंगार को स्वीकार किया है। शृंगार रस के दो प्रमुख भेद हैं—संयोग शृंगार एवं वियोग शृंगार। वियोग शृंगार के चार भेद आचार्यों ने माने हैं—पूर्वराग, प्रवास, मान और करुण।

संयोग शृंगार—सूरदास के काव्य में शृंगार के दोनों पक्षों का मार्मिक चित्रण उपलब्ध होता है। वे वात्सल्य एवं शृंगार रस के सम्राट इसलिए कहे जाते हैं, क्योंकि इन दोनों रसों में जितनी भी स्थितियां सम्भव हैं, उनका निरूपण सूरदास ने अपने काव्य में किया है। संयोग शृंगार के विविध चित्र सूर काव्य में उपलब्ध होते हैं। आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार—**"वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आंखों से किया, उतना और किसी कवि ने नहीं। इस क्षेत्र का कोना-कोना वे झांक आए। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतना और कोई नहीं। हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।"** उनके शृंगार के आलम्बन राधा-कृष्ण हैं। कृष्ण यदि ग्वालबालों के पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं तो राधा स्वाभाविक रूप से ब्रज की किशोरियों का नेतृत्व करती है। कृष्ण को अचानक ही राधा ब्रज की लड़कियों के साथ दिखाई दी। उस समय उसकी छटा कैसी अनुपम थी—

औचक ही देखी तहं राधा, नयन विसाल भाल दिए रोरी।
नील वसन फरिया कटि पहरें, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन थोरी अति छवि तन गोरी॥

राधा ने नीले वस्त्र पहने हुए हैं, पीठ पर वेणी झूल रही है। उसकी वयस अभी थोड़ी है और वह अत्यन्त गौरवर्ण वाली है। राधा के रूप का जादू चल गया। दोनों के नेत्र मिले और कृष्ण उसका परिचय पूछने लगे—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहत काकी तू बेटी देखी नाहिं कबहुं ब्रज खोरी।
काहे कौं हम ब्रज तन आवति खेलत रहत आपनी पौरी।
सुनत रहत स्रवननि नन्द ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी।
तुमरौ कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि गोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी।

आंखों की यह उलझन युवा-अवस्था की नहीं थी जिसमें वाणी अवरुद्ध हो जाती है यह बाल्यकाल की स्वर्णिम उलझन थी, जिसमें न झिझक है, न संकोच। इस प्रकार दो बालकों में शुद्ध साहचर्य प्रारम्भ होता है जो कालान्तर में प्रेम में परिणत हो जाता है। दोनों ही आंखों से बात करते हैं। दोनों का मन एक दूसरे में उलझ गया—

प्रथम सनेह दुहूं मन मान्यौ।
नैन सैन कीनी सब बातैं गुप्त प्रीति सिसुता प्रगटान्यौ॥

बचपन का प्रेम आगे बढ़ता है और प्रेम के गोपन व्यापार से उसमें दृढ़ता आती जाती है। वे प्रतिदिन एक-दूसरे से मिलते हैं। राधा को इसके लिए अनेक बहाने बनाने पड़ते हैं, कभी-कभी तो राधा को अपनी मां की खीझ का भी सामना करना पड़ता है—

काहे को तुम जहं-तहं डोलति हमको अतिहि लजावती।
अपने कुल की खबर करौ धौं सकुच नहीं जिय आवती॥

प्रेम क्रीड़ाओं में दोनों ही चतुराई का परिचय देते हैं। विभिन्न काम चेष्टाओं का वर्णन सूरदास ने सरस रूप में किया है—

चूमत अंग परसपर जनु जुग चंद करत हित वारा।
रसन दसन भरि चांपि चतुर अति करत रंग विस्तारा॥

कभी वे परस्पर चूमते हैं तो कभी आलिंगनबद्ध होते हैं। सूरदास ने इसका वर्णन इन पंक्तियों में किया है—

अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों मरकत मणि कंचन में जरिया॥

दोनों एक दूसरे से लिपटे हुए ऐसे लग रहे हैं मानो सोने में मरकत मणि जड़ी हो। राधा का गौर वर्ण स्वर्ण की भांति है तथा कृष्ण का श्यामल वर्ण मरकत मणि के समान दमक रहा है।

एक दिन जब कृष्ण अपने हाथ से राधा के उरोजों का स्पर्श कर रहे थे तभी अचानक माता यशोदा आ गईं—

जबहिं सरोज धर्‌यो श्रीफल पर तब जसुमति गई आय।

और कृष्ण को अचानक बहाना बनाना पड़ा कि देखो मां इसने मेरी गेंद चुरा ली है और अब देती नहीं। राधा को भी बहाना बनाना पड़ा और वह कहने लगी क्यों झींक रहे हो चलो मेरे साथ बता दूं कि तुम्हारी गेंद मैंने कहां रखी है—

काहे को झकझोरत नोखे, चलहु न देउं बताय।

राधा और कृष्ण दोनों ही मनोहर सौन्दर्य से मण्डित हैं। राधा की सुन्दरता का वर्णन सूरदास इन शब्दों में करते हैं—

चन्द्रमुखी भौहें कलंक बिच चन्दन तिलक लिलार।
मनु बेनी भुवंगिनी परसत, स्रवत सुधा की धार॥
जुगल जंघ जेहरि जराव की राजति परम उदार।
राजहंसि गति चलति कृसोदर अति नितम्ब के भार॥

Scanned with CamScanner

कृष्ण के रूप का सम्मोहन भी राधा के सिर चढ़कर बोल रहा है। अपनी आंखों में उस रूप को उसने इस प्रकार बसा लिया है, कि अब मन कहीं और लगता ही नहीं।

उद्दीपन के रूप में सूरदास ने आलम्बन की चेष्टाओं एवं प्रकृति दोनों को स्थान दिया है। कृष्ण गाय दुहते समय दूध की धार राधा के मुख पर मारने की चेष्टा करते हैं और राधा उन्हें डांटती हुई अपनी खीझ व्यक्त करती है—

तुम पै कौन दुहावे गैया।
इत चितवत उत धार चलावत इहि सिखयो है मैया॥

बड़े होशियार बनते हो, गाय दुहना तक तो आता नहीं, यही सिखाया है तुम्हारी मैया ने? देखते इधर हो धार उधर चला रहे हो।

सूर के शृंगार वर्णन में सभी शास्त्रीय उपादान उपलब्ध होते हैं। उसमें सभी प्रकार के अनुभाव—कायिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक उपलब्ध होते हैं। कायिक अनुभाव का एक चित्र द्रष्टव्य है—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुंचावत एक धार जहं प्यारी ठाढ़ी।

इसी प्रकार सभी संचारी भाव भी सूर के शृंगार वर्णन में उपलब्ध होते हैं। संयोग शृंगार के अन्तर्गत चित्त की चंचलता, संकोच, लज्जा, भय, आदि संचारी भावों का वर्णन उन्होंने किया है। यथा—

चित्त चंचल कुंवरि राधा खान-पान भुलाइ।
कबहुं बिलपति कबहुं बिहँसति सकुचि रहति लजाइ।
मातु-पितु कौ त्रास मानति मन बिना भइ बाइ।
जननि सौं दोहनी मांगति बेगि दै री माइ।
सूर प्रभु कौ खरिक मिलिहौं गए मोहि बुलाइ।

इस प्रकार सूर का शृंगार वर्णन शास्त्रीय दृष्टि से भी खरा उतरता है। गोचारण प्रधान संस्कृति की पृष्ठभूमि पर आधृत यह प्रेम धीरे-धीरे राधा-कृष्ण के मन में जड़ें जमाता गया। सूर ने अनेक पदों में इस अनुराग को अमर्ष, खीझ, आदि भावों का पुट देकर विनोदपूर्ण ढंग से वर्णन किया है :

करि लेउ न्यारी अपनी गैयां।
नहीं अधीन तेरे बाबा के नहिं तुम हमरे नाथ गोसैयां॥

यह अनुराग विभिन्न लीलाओं—माखन लीला, रासलीला, मुरली लीला, आदि के माध्यम से पनपता रहा और एक दिन पूर्ण प्रेम बन गया। यह प्रेम रूपलिप्सा एवं साहचर्य के ठोस आधार पर टिका है। आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार—**"सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूपलिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। बाल क्रीड़ा के सखा-सखी आगे चलकर यौवन क्रीड़ा के सखा-सखी हो जाते हैं।"**

राधा के अतिरिक्त कृष्ण गोपियों के साथ भी अनेक प्रकार की लीलाएं करते हैं। पनघट लीला, चीरहरण, रास लीला, आदि से सम्बन्धित पद भी संयोग शृंगार के अन्तर्गत आते हैं। सूर के काव्य में उपलब्ध शृंगार के विभिन्न अंगोपांगों को देखकर परवर्ती आलोचकों का एक वर्ग यह भी मानता है कि रीतिकालीन कवियों की शृंगार भावना सूर से ही प्रभावित रही है।

कुछ आलोचकों ने सूरदास के द्वारा वर्णित शृंगारिक लीलाओं में आध्यात्मिकता को खोजने का प्रयास किया है। वे कृष्ण को परम ब्रह्म, गोपियों को जीवात्मा मानकर उनकी लीलाओं की व्याख्या आध्यात्मिक रूप में करते हैं। चीरहरण लीला में गोपियों ने अर्थात् जीवात्माओं ने जब अपनी गोप्यतम निधि परमब्रह्म को अर्पित कर दी, तभी उन्हें भगवान की निकटता प्राप्त हो सकी। इसी प्रकार दान लीला में गोरस प्रदान करके ही गोपियां कृष्ण को प्राप्त कर सकीं। इन्द्रिय जन्य वासना (गोरस) को भगवान को समर्पित करके ही जीव उसमें आत्मसात् हो सकता है।

वियोग शृंगार—सूरदास ने वियोग शृंगार का भी अत्यन्त व्यापक एवं विशद वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियां ठगी सी रह गईं और उनके जीवन में विरह वेदना व्याप्त हो गई। आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बहने लगी। उन्हें खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्रियतम के बिना उन्हें रात काली नागिन के समान लगती है—'**पिया बिनु नागिन कारी राति**'।

उद्धव ब्रज में आकर गोपियों को ज्ञान-योग का संदेश देने लगे, किन्तु गोपियां उस उपदेश को ग्रहण करने के लिए तत्पर नहीं हैं। वे कृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुल हैं। उद्धव की रूखी बातें सुनकर वे भला कैसे रह सकती हैं—

अंखियां हरि दर्शन की भूखी।
कैसे रहैं रूप रस रांची ये बतियां सुनि रूखी॥

गोपियों को वेदना ने इतना अधीर, व्याकुल एवं आतुर बना दिया है कि उन्हें अपने तन-मन का होश नहीं है। विरह वेदना से व्यथित होकर वे मर जाना ही अच्छा समझती हैं—

अब या तनहिं राखि का कीजै।
सुन री सखी श्यामसुन्दर बिन बांटि विषय विष पीजै॥

सूरदास ने विरह के अत्यन्त सात्विक एवं अनन्य रूप का चित्रण अपने काव्य में किया है। उनकी गोपियां, 'मनसा, वाचा, कर्मणा' कृष्ण के प्रति समर्पित हैं। वे कृष्ण की अनन्य भक्त हैं और उद्धव से कहती हैं—

ऊधौ मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को अराध तुव ईस॥
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस॥

सूर के विरह वर्णन में उक्ति वैचित्र्य एवं उपालम्भ भाव की प्रमुखता है। वे उद्धव से कहती हैं कि हमें तो तुम्हारी मथुरा

Scanned with CamScanner

सूर की भक्ति भावना

सूरदास की भक्ति-भावना में प्रमुखता तो पुष्टि मार्ग की है तथापि उसमें नवधा भक्ति और विनय की प्रधानता है। बल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व वे विनय के पद लिखा करते थे तथा अन्य भक्ति पद्धतियों एवं उपासना प्रणालियों से प्रभावित थे। उनके कुछ पदों में जाति-पांति का विरोध, सतगुरु की महत्ता, वैराग्य की महत्ता, वेदशास्त्र की निन्दा तक की गई है। ऐसे पदों में वे निर्गुण सन्त कवि कबीर का अनुसरण करते दिखाई पड़ते हैं। दूसरी ओर उनके काव्य में दीनता, भर्त्सना, आश्वासन, भय दर्शन, मानमर्षता, मनोराज्य, आदि विनय की भूमिकाएं भी उपलब्ध होती हैं। इष्टदेव में दृढ़ विश्वास, दैन्य,

Scanned with CamScanner

अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, इष्टदेव का गुणगान जैसे—विषयों पर भी सूर के पद मिलते हैं जो इस तथ्य का प्रमाण है कि सूरदास बल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व एक सन्त महात्मा थे। उनके काव्य में उपलब्ध भक्ति का विवेचन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है :

(1) **पुष्टि मार्ग की भक्ति**—सूरदास भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। वे सगुण भक्तिधारा के कृष्णभक्त कवि हैं। उनकी भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है जिसमें भगवान के पोषण या अनुग्रह पर विशेष बल दिया जाता है—**'पोषणं तदनुग्रहं'** अर्थात् ईश्वर की कृपा ही पुष्टि है। सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे और वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनकी गणना अष्टछाप के कवियों में की जाती है।

पुष्टि मार्ग में सेवा का बड़ा महत्व है, सूरदास के काव्य में गुरु सेवा, सन्त सेवा, प्रभु सेवा तीनों उपलब्ध होती हैं। पुष्टि मार्ग में नित्य सेवा विधि और वार्षिकोत्सव सेवा विधि का भी बड़ा महत्व है। सूरदास ने नित्य सेवा विधि का सांगोपांग वर्णन किया है। पुष्टि मार्ग सेवा विधान में साधक को नाना क्लेश उठाकर पहले आत्मज्ञान प्राप्त करना पड़ता है, फिर वह लोकार्थी के रूप में भगवान श्रीकृष्ण की सेवा और आराधना करता हुआ अपने अहंकार एवं ममत्व का विनाश करता है, तब अन्त में उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। भक्त शुद्ध प्रेम द्वारा भगवद् भक्ति करता हुआ सहज ही भगवान के अनुग्रह को प्राप्त करके अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है। सन्त सेवा के सम्बन्ध में सूर का कथन है :

सुनौ सन्त सेवा की रीति। करें कृपा मन राखें प्रीति॥
उठि कैं प्रात गुरुन सिर नावें। प्रात समय श्रीकृष्णहिं ध्यावें॥

सूर ने भले ही अपनी रचनाओं में पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों का कथन किया हो तथापि उनमें सर्वत्र मौलिकता विद्यमान है। क्रियात्मक सेवा एवं भावात्मक सेवा में उन्होंने मौलिकता बनाए रखी है। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के अनुसार—**"सूरदास पुष्टि मार्ग में दीक्षित होते हुए भी साम्प्रदायिकता से बहुत दूर थे और भागवत का अनुसरण करते हुए भी भागवत निरपेक्ष थे। उनका अपना अलग व्यक्तित्व है उनका काव्य एक महान सागर है जिसमें अनेक प्रकार के रत्न छिपे हैं।"**

(2) **सगुण कृष्ण के उपासक**—सूरदास निर्गुण की अपेक्षा सगुण को महत्व देते हैं। उनकी मान्यता है कि निर्गुण और निराकार ब्रह्म इन्द्रियातीत है जिसकी अनुभूति तो होती है, पर अभिव्यक्ति नहीं हो सकती अतः वे उसे मन वाणी के लिए अगम अगोचर मानकर सगुण ईश्वर के लीला पदों का गान करते हैं :

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगे मीठे फल कौ रस अन्तरगत ही भावै॥
मन बानी कौ अगम अगोचर निरालम्ब मन चक्रत धावै॥
सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन लीला पद गावै॥

(3) **विनय भावना**—सूरदास के पदों में 'विनय के पद' अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिनमें कवि ने प्रभु की शरण में जाकर अपने उद्धार की प्रार्थना की है। विनय की सभी सातों भूमिकाएं उनके काव्य में उपलब्ध होती हैं। वे कहते हैं :

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठो द्रुम डरियां पारिधि साधे बान॥

संसार रूपी वृक्ष की शाखा पर जीवात्मा रूपी पक्षी बैठा हुआ है। नीचे शिकारी वाण का संधान कर रहा है और ऊपर बाज मंडरा रहा है। माया और काल के चक्र में बंधा जीवात्मा पक्षी की भांति फड़फड़ा रहा है। प्रभु की कृपा से ही इन दोनों के डर से वह मुक्त हो सकता है।

(4) **सखा भाव की भक्ति**—सूरदास की भक्ति भावना दास्य भाव की न होकर सखा भाव की है। वे कृष्ण के सखा बनकर उन्हें उपालम्भ भी देते हैं, उनसे तर्क-वितर्क भी करते हैं और लड़ने-झगड़ने को भी तत्पर रहते हैं :

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं कै हमहीं माधौ अपने भरोसे लरिहौं॥

(5) **आत्म निवेदन की प्रवृत्ति**—सूरदास की भक्ति भावना में आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति भी है। वे स्वयं को पापियों का सम्राट तक कहने में संकोच नहीं करते। स्वयं को महापतित निरूपित करते हुए कहते हैं :

प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ॥

(6) **कृष्ण के प्रति अनन्यता**—सूर की भक्ति भावना अनन्य है। वे कृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित भक्त हैं। उन्हें कृष्ण के अतिरिक्त और कोई आश्रय दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिए वे कहते हैं :

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै॥

जहाज के पक्षी को कहीं कोई अवलम्ब नहीं होता। उड़कर जाए भी तो कहां जाए? अन्ततः उसी जहाज पर लौट आता है। भटकते हुए मन को कृष्ण भक्ति का यह जहाज ही संसार से पार ले जा सकता है।

(7) **निष्कर्ष**—निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूर की भक्ति भावना में पुष्टिमार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति की प्रधानता है। सख्य भाव की भक्ति अपनाते हुए भी सूरदास ने वात्सल्य भाव एवं दाम्पत्य भाव की सुन्दर अभिव्यंजना अपने पदों में की है। भक्त प्रवर सूरदास उच्चकोटि के भक्त थे। वे कृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित थे उन्हीं को अपना आराध्य मानते थे। उनकी भक्ति भावना पुष्टिमार्ग, सखा भाव की थी। वे हिन्दी भक्त कवियों में उच्च स्थान के अधिकारी हैं। वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर की कृपा प्राप्त होने पर ही जीव का कल्याण होता है। उन्होंने स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और रूपासक्ति में से प्रमुखतः लीलासक्ति को ही अपनाया है। इसीलिए उनके पद लीला-पद कहे जाते हैं।

सूर काव्य में गीति तत्व

देखिए III(A) का पृ. 23.

Scanned with CamScanner